International Journal of Sanskrit Research 2016; 2(5): 37-40

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2016; 2(5): 37-40
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 13-07-2016
Accepted: 14-08-2016

आशीष कुमार
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग
राजधानी महाविद्यालय (दिल्ली विश्वविद्यालय) राजा गार्डन, नई दिल्ली -110015

Correspondence
आशीष कुमार
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग
राजधानी महाविद्यालय (दिल्ली विश्वविद्यालय) राजा गार्डन, नई दिल्ली-110015

राजा 'तत्त्व' का सूक्ष्म विश्लेषण : शुक्रनीति के विशेष सन्दर्भ में

आशीष कुमार

राजनीति शब्द दो शब्दों, राजा और नीति से बनता है। इसमें राजा की उत्पत्ति √रञ्ज् धातु, जिसका अर्थ प्रसन्न करना अथवा कष्ट को दूर करना होता है, से होती है। अर्थात् राजा अपने व्युत्पत्तिमूलक अर्थों में प्रजा के दुःखों को दूर करने वाला होता है। ऐसा वह जिस नीति का अनुसरण करते हुए करता है वही राजनीति कहलाती है। राजनीति के लिए और भी अन्य शब्दों का प्रयोग किया गया है जैसे राजधर्म, राजविद्या, दण्डनीति, नीतिशास्त्र, नयशास्त्र आदि। छान्दोग्योपनिषद् (7.1.2) में इसे क्षत्रविद्या कहा गया है। राजनीति विषयक चिन्तन की संस्कृत साहित्य में विशद् परम्परा है। इस क्षेत्र में अनेक ग्रन्थों का प्रणयन हुआ है। महाभारत आदि ग्रन्थों में तो भिन्न-भिन्न स्थलों पर राजनीति सम्बन्धी प्रश्नों पर बार-बार विचार किया गया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के बाद सम्भवतः शुक्राचार्य रचित शुक्रनीति सबसे विशाल ग्रन्थ है जिसमें राजनीति को मुख्य वर्ण्यविषय माना गया है। संस्कृत साहित्य परम्परा में शुक्राचार्य का नाम अनेक सन्दर्भों में प्राप्त होता है। शुक्राचार्य को उशना, काव्य, भार्गव, कवि आदि नामों से भी जाना जाता है।

वेदों में शुक्राचार्य का उल्लेख विविध स्थानों पर प्राप्त होता है। ऋग्वेद में उन्हें काव्य ऋषि के नाम से सम्बोधित किया गया है। यजुर्वेद में उशना ऋषि के नाम से अनेक मन्त्र हैं। अथर्ववेद में भी शुक्राचार्य को अनेक मन्त्रों का ऋषि स्वीकार किया गया है[1]। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शुक्र एक प्राचीन वैदिक ऋषि हैं।

वेदों के अतिरिक्त महाभारत में भी शुक्राचार्य को दैत्य-गुरु, काव्य, उशना, भार्गव, कवि आदि नामों से उल्लिखित किया गया है। महाभारत में शुक्राचार्य को 'अमितप्रज्ञः' और 'महायशाः' जैसी उपाधियों से अलङ्कृत किया गया है[2]। महाभारत के आदिपर्व के अनुसार देवासुर संग्राम के समय देवताओं ने बृहस्पति को और राक्षसों ने शुक्राचार्य को यज्ञ के लिए पुरोहित निश्चित किया था। इससे भी उशना की महत्ता और प्राचीनता प्रमाणित होती है। शान्तिपर्व में भीष्म पितामह ने विद्या-प्राप्ति के प्रसंग में बृहस्पति तथा शुक्राचार्य की नीतियों का वर्णन किया है[3]।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी औशनस सम्प्रदाय की चर्चा की गई है। अर्थशास्त्र के अनुसार उशना ऋषि आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति में से दण्डनीति में ही सर्वाधिक विश्वास रखते थे[4]।

दशकुमारचरित में दण्डी नीतिकारों के नामोल्लेख क्रम में सर्वप्रथम शुक्राचार्य का नाम लेते हैं। बुद्धचरित और कुमारसम्भव में भी शुक्राचार्य की प्रशंसा की गई है। शुक्रनीति के अन्तर्गत कहा गया है कि शुक्राचार्य की नीति के समान तीनों लोकों में कोई नीति नहीं है। वस्तुतः व्यवहार योग्य नीति शुक्रनीति है, इसके अतिरिक्त नीति कुनीति है[5]।

जगदीशचन्द्र मिश्र के अनुसार यद्यपि वेद से लेकर अर्थशास्त्र और उसके बाद में भी शुक्राचार्य के लिए अनेक नामों का उल्लेख प्राप्त होता है, परन्तु वर्तमान शुक्रनीति को शुक्र द्वारा कहा हुआ बतलाया है और उन्हें 'भार्गव' नाम से भी जाना जाता है[6]।

शुक्रनीति के रचयिता और रचना के समय को लेकर विद्वानों में मतभेद है। परम्परा शुक्राचार्य को ही शुक्रनीति का रचयिता मानती है। स्वयं शुक्रनीति से भी इसकी पुष्टि होती है। परन्तु महाभारत में अनेक

स्थानों पर वर्णित शुक्रकृत नीतिशास्त्र में 1000 अध्याय थे तथा शुक्रनीति में केवल 2200 श्लोक होने की बात कही गई है[7]। शुक्रनीति के वर्तमान संस्करणों में कुल 2454 श्लोक हैं। यह बात स्वीकारने योग्य नहीं हो सकती कि जिस ग्रन्थ में 1000 अध्याय हों उसमें केवल 2200 या 2454 श्लोक ही हों। इस प्रकार परम्परा का अनुवर्तन करते हुए यह स्वीकार किया जा सकता है कि शुक्राचार्य ने ही अपने 1000 अध्यायों वाले ग्रन्थ को लोकानुग्रह हेतु बाद में इतने छोटे रूप में प्रस्तुत अथवा परिवर्तित किया हो। ऐसा शुक्रनीति के प्रारम्भिक दो प्रतिज्ञा-परक श्लोकों से संकेत प्राप्त होता है।

आधुनिक विद्वानों के एक मत के अनुसार शुक्रनीति में गुप्त साम्राज्य के बाद की तथा हर्षवर्धन से पहले की स्थितियाँ दिखाई देती हैं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि बाद में किसी अन्य आचार्य ने इसकी रचना कर इसे प्रतिष्ठित करने हेतु लेखक के रूप में शुक्राचार्य का नाम दे दिया हो। यह ध्यातव्य है कि मनुस्मृति का उल्लेख शुक्रनीति में हुआ है। अतः शुक्रनीति मनुस्मृति के बाद की रचना है। डॉ. अलतेकर ने शुक्रनीति को 800 से 1200 ई. के बीच की रचना माना है। डॉ. घोषाल ने इसे 1200 ई. से 1600 ई. के बीच का माना है। डॉ. जायसवाल के अनुसार शुक्रनीति का काल चौथी से पाँचवीं शताब्दी ई. के मध्य है[8]। इस प्रकार अलग-अलग आधारों पर विद्वानों ने शुक्रनीति का रचनाकाल अलग-अलग माना है।

राजा शब्द की उत्पत्ति √रञ्ज् धातु से हुई है, ऐसा सामान्यतः माना जाता है। किन्तु जब हम राष्ट्र शब्द की व्युत्पत्ति देखते हैं, जो √राज् धातु से हुई है जिसका अर्थ चमकना या प्रकाशित होना होता है तो विचार में एक द्विविधा उत्पन्न होती है कि प्राथमिक राज्य है अथवा राजा है। ऋग्वेद कालीन चिन्तन को देखकर यह आभास होता है कि एक भौगोलिक क्षेत्र जिसे जन या विश कहते थे के विशिष्ट लोग अपने शासन प्रशासन के लिए समिति और सभा बनाते थे। ये सभा और समिति अपने लिए सभापति चुनती थी। कालान्तर में वे सभापति ही राजा, महाराज, सम्राट आदि शब्दों में परिवर्तित होने लगा। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रारम्भ में एक लोकतान्त्रिक व्यवस्था ही रही होगी जो उत्तरवैदिक काल तक आते-आते कब दैवी सिद्धान्त में परिवर्तित हो गई इसका कोई शाब्दिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। सभी राजनैतिक चिन्तन वाले ग्रन्थों में राजा का तात्त्विक विश्लेषण तो नहीं मिलता है तथापि राजा के अधिकार और कर्त्तव्यों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन प्राप्त होता है। वेदों में 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग अनेक बार देखने को मिलता है, जो राज्य, साम्राज्य, देश, प्रजा आदि का वाचक है। ये सन्दर्भ वेदों में राष्ट्रीय भावना और राष्ट्र की परिकल्पना को प्रदर्शित करते हैं। वैदिक ऋषि के लिए उसकी राष्ट्रभूमि ही सर्वस्व है, जिसके लिए वह अत्यन्त भावुक है। अथर्ववेद के भूमिसूक्त में राष्ट्रभूमि को सुखदायिनी, अभयप्रदा, आनन्दप्रदायिनी, कल्याणकारिणी माता कहा गया है जो अन्न, जल और घी से परिपूर्ण करती है[9]। एक मन्त्र में वैदिक ऋषि अपनी स्वाभिमान विषयक भावना को प्रकट करते हुए कहता है कि 'हमारी भूमि हमारे उत्तम राष्ट्र में तेज और बल को स्थापित करे'[10]।

यजुर्वेद में भी 'आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो...' इस मन्त्र के द्वारा स्वस्थ, सुखी, समृद्ध राष्ट्र के लिए जो कुछ भी आवश्यक है उसकी अभिलाषा प्रकट की गई है। इस मन्त्र को वेद का राष्ट्रीय गीत भी माना जाता है। अथर्ववेद के अनुसार राष्ट्रीय समृद्धि शारीरिक, बौद्धिक और प्राकृतिक तीनों रूपों में होनी चाहिए। ज्ञान और कर्मठता राष्ट्रीयता के प्रमुख गुण हैं। राजा ब्रह्मचर्य और तप की सहायता से ही राष्ट्र की सुरक्षा करने में समर्थ होता है[11]।

राजा शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है - 'राजते शोभते इति'[12]। कोश ग्रन्थों में राजा के कम से कम 27 अर्थ बताये गये हैं[13]। जबकि राजा को ब्रह्मवैवर्तपुराण में रागी और रागान्ध बताया गया है[14]। वहीं राजा को पिता, पालनकर्ता, भयत्राता आदि भी कहा गया है[15]। इस प्रकार अनेक पुराण, काव्यादि ग्रन्थों में राजा के स्वरूप का वर्णन तो प्राप्त होता है, किन्तु राजा की उत्पत्ति के विषय में प्रायः सभी ग्रन्थ मौन हैं। इस सन्दर्भ में शुक्राचार्य विरचित शुक्रनीति को देखना समीचीन होगा।

शुक्रनीति ने राजपद को केन्द्रीय महत्त्व प्रदान किया है, राजा का प्रमुख कर्त्तव्य प्रजा की सेवा है। राजा के बिना प्रजा ऐसे ही नष्ट हो जाती है, जैसे मल्लाह रहित नौका भटककर नष्ट हो जाती है[16]।

शुक्रनीति में राजतत्त्व सम्बन्धी विभिन्न अवधारणाएँ प्राप्त होती हैं। शुक्रनीति के अनुसार राजतत्त्व का निर्माण आठ देवताओं के अंश से हुआ है - इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा तथा कुबेर। जो राजा इन देवताओं के गुणों के अनुसार सदाचरण करता है, वही वास्तव में देवांश राजा होता है[17]।

शासन करना तप के समान है और तप के तीन प्रकार बताए गए हैं - सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। इसके अनुसार सात्त्विक राजा सभी कर्त्तव्यों का नीति के अनुसार पालन करता है, राजसिक राजा वासना एवं विषयों में आसक्त होता है जबकि तामसी राजा कर्त्तव्यहीन एवं नीतिभ्रष्ट होता है[18]।

शुक्रनीति के अनुसार ब्रह्म के द्वारा राजा को ऐसा प्रजा-सेवक बनाया गया है, जो वेतन के रूप में प्रजा से कर प्राप्त करता है, इसलिए राजा को प्रजा से कर ग्रहण करके सेवक की भांति प्रजा की रक्षा एवं सेवा करनी चाहिए[19]।

शुक्रनीति में राजा के देवत्व पर भी विचार किया गया है। जैसा कि उल्लेख किया गया है शुक्र ने राजा को आठ देवताओं के अंश से निर्मित बताया है। शुक्र ऐसे भारतीय विचारक हैं, जिन्होंने राजा के प्रत्यक्ष देव होने की धारणा का समर्थन नहीं किया है[20]।

शुक्र ने न तो राजा को 'देव' स्वीकार किया है और न ही उसके दैवी अधिकार माने हैं, परन्तु उसके दायित्वों की दिव्यता का स्पष्टीकरण अवश्य ही किया है।

गुण व कर्म के आधार पर भी शुक्रनीति में राजा का वर्गीकरण देखा जा सकता है - (1) सात्त्विक (2) राजस और (3) तामस तीन प्रकार के राजा, शुक्रनीति में माने गए हैं[21]।

जब किसी राजा को उसके शत्रु सत्ता से बाहर कर देते हैं तो ऐसा राजा 'दस्यु राजा' का जीवन व्यतीत करता है। राजाओं की वार्षिक आय के आधार पर आठ प्रकार के राजाओं का उल्लेख किया है - 1. सामन्त 2. माण्डलिक 3. राजा 4. महाराजा 5. स्वराट् 6. सम्राट् 7. विराट् 8. सार्वभौम।

शुक्र नीति में नैतिक आधार को भी वर्गीकरण में प्रमुखता देते हुए कहा गया है कि राजा की आय प्रजा को पीड़ा दिए बिना होनी चाहिए तथा यह केवल राजतन्त्र से सम्बन्धित वर्गीकरण ही है[22]।

प्राचीन भारत में राज्याभिषेक संस्कार का विशेष महत्त्व था और इसके द्वारा ही राजा सत्ता का वैध अधिकारी माना जाता था। शुक्रनीति में इस परम्परा के प्रतिकूल अनभिषिक्त राजा का भी उल्लेख किया गया है[23]। शुक्रनीति ने राजा के लिए ऐसे व्यावहारिक व मानवीय गुणों से सम्पन्न होना आवश्यक माना है, जिनके द्वारा व्यापक दायित्वों का उचित प्रकार से निर्वाह कर सके तथा सार्वजनिक प्रशंसा का पात्र बना रहे। राजा को सर्वप्रथम अपने ऊपर ही विजय पानी चाहिए। राजा के गुणों के अनुसार ही उसके सहायकों के गुण भी हो जाते हैं। अतः सदैव राजा को गुणवान् होने का आदर्श ही प्रस्तुत करना चाहिए। राजा केवल राजकुल में उत्पन्न होने के कारण ही प्रजा का आदर प्राप्त नहीं करता अपितु उसके गुण ही उसे आदर प्रदान करते हैं[24]।

शुक्रनीति ने राजा को निरंकुश एवं सर्वशक्तिमान् मानने पर अपनी सहमति नहीं जताई है। शुक्राचार्य राजा के गुणहीन और अयोग्य होने की बात स्वीकार करते हैं। इस बात पर बल देते हुए उन्होंने कहा है - बहुमत की ताकत राजा से अधिक होती है क्योंकि अनेक तन्तुओं से बनी रस्सी जैसे बलवान् जन्तुओं को भी खींच लाने में समर्थ होती है[25]।

आचार्य शुक्र के इस कथन में लोकतन्त्र और जनमत की शक्तिमत्ता के सूत्र सहज ही देखे जा सकते हैं।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि शुक्राचार्य राजा सम्बन्धी चिन्तन में अन्य सभी परम्परागत मतों से टकराते हैं और बहुत हद तक सहमत होते हुए भी इन्होंने राजा की निरकुंशता से जनमत को श्रेष्ठ बताया है। राजा अपने कर्त्तव्य से राजा होता है न कि जन्म और भाग्य से।

पाद टिप्पणी

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र एवं शुक्रनीति की राजव्यवस्थाएँ, कमलेश अग्रवाल, राधा पब्लिकेशन, दिल्ली, 1997, पृ. 29.
2. 59/85, महाभारत, शान्तिपर्व
3. उशना वेद यच्छास्त्रं यच्च देवगुरुर्द्विजः। 37/10, महाभारत, शान्तिपर्व
4. दण्डनतिरेका विद्येत्यौशनसाः। 1/1/4, अर्थशास्त्र
5. न कवेः सदृशी नीतिस्त्रिषु लोकेषु विद्यते। काव्यैव नीतिरन्या तु कुनीतिर्व्यवहारिणाम्।। 4/7/425, शुक्रनीति, पृ. 903, डॉ. जगदीशचन्द्र मिश्र (व्या.), चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण-2009.
6. शुक्रोक्तनीतिसारम्। 4/7/424, शुक्रनीति, पृ. 903.
7. द्वाविंशतिशतं श्लोका नीतिसारे प्रकीर्तिताः। 4/7/423, शुक्रनीति, पृ. 903.
8. कौटिल्य अर्थशास्त्र एवं शुक्रनीति की राज्यव्यवस्थाएँ, कमलेश अग्रवाल, पृ. 30.
9. संस्कृत साहित्य में राष्ट्रवाद और भारतीय राजशास्त्र, डॉ. शशि तिवारी, विद्यानिधि प्रकाशन, 2013, पृ. 136-137.
10. सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे। 12/1/8, अथर्ववेद
11. ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति। 11/5/17, अथर्ववेद
12. राजा, [न्] पुं, (राजते शोभते इति। राज् + "कणिन् युवृषितक्षिराजीति।" उणा. 1। 156। इति कणिन्।) प्रभुः। नृपतिः। (यथा-रघुः।4।11।), शब्दकल्पद्रुम।
13. अथ नृपतेः पर्य्यायः। राट् 2 पार्थिवः 3 क्ष्माभृत् 4 नृपः 5 भूषः 6 महीक्षित् 7। इत्यमरः।। नरपतिः 8 पार्थः 9 नृपतिः 10 भूपालः 11 भूभृत् 12 महीपतिः 13 नाभिः 14 नाराट् 15 भूमीन्द्रः 16 नरेन्द्रः 17 नायकाधिपः 18। इति शब्दरत्नावली।। प्रजेश्वरः 19 भूमिपः 20 इनः 21 दण्डधरः 22 अवनीपतिः 23 स्कन्दः 24 स्कन्धः 25 भूभु 26 अर्थपतिः 27। इति जटाधरः।।*।। शब्दकल्पद्रुम।
14. "रागी राजसिकं स्वर्ग्यं कुरुते कर्म्म रागतः। रागान्धा श्च राजसिकास्तेन राजा प्रकीर्त्तितः।।" इति ब्रह्मवैवर्त्ते गणपतिखण्डे 35 अध्यायः।।*।। शब्दकल्पद्रुम
15. "शृणु वत्स! महाराज हे तात! भयभञ्जन। भयत्राता च राजा च सर्व्वेषां पालकः पिता।। भ्रष्टश्री श्च महेन्द्रोऽद्य त्वञ्च स्वर्गे नृपोऽधुना। यो राजा स पिता पाता प्रजानामेष नि श्चयः।।" शब्दकल्पद्रुम
16. यदि न स्यान्नरपतिः सम्यङ्नेता ततः प्रजा। अकर्णधारा जलधौ विप्लवेतेह नौरिव।। 1/65, शुक्रनीति, पृ. 25.
17. यो हि धर्मपरो राजा देवांशोऽन्यश्च रक्षसाम्।
अंशभूतो धर्मलोपी प्रजापीडाकरो भवेत्।।
अराजके हि सर्वस्मिन् सर्वतो विद्रुते भयात्।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत् प्रभुः।।
इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।
चन्द्रवित्तेशयोश्चापि मात्रा निर्हत्य शाश्वतीः।। 1/70-72, शुक्रनीति, पृ. 28-29.
18. सात्त्विकं राजसं चैव तामसं त्रिविधं तपः।
यादृक् तपति योऽत्यर्थं तादृग् भवति वै नृपः।।
देवांशान् सात्त्विको भुङ्क्ते राक्षसांशांस्तु तामसः।
राजसो मानवांशांस्तु सत्त्वे धार्य्यं रमनस्ततः।। 1/29, 35, शुक्रनीति, पृ. 12, 14.
19. जङ्गमस्थावराणाञ्च हीशः स्वतपसा भवेत्।
भागभाग्रक्षणे दक्षो यथेन्द्रो नृपतिस्तथा।।73।। 1/73, शुक्रनीति, पृ. 29.
20. यो हि धर्मपरो राजा देवांशोऽन्यश्च रक्षसाम्।
अंशभूतो धर्मलोपी प्रजापीडाकरो भवेत्।। 1/70, शुक्रनीति, पृ. 28.
21. सात्त्विकं राजसं चैव तामसं त्रिविधं तपः।
यादृक् तपति योऽत्यर्थं तादृग् भवति वै नृपः।। 1/29, शुक्रनीति, पृ. 12.
22. ततस्तु कोटिपर्य्यन्तः स्वराट् सम्राट् ततः परम्।
दशकोटिमितो यावत् विराट् तु तदनन्तरम्।।
पञ्चाशत्कोटिपर्य्यन्तः सार्वभौमस्ततः परम्।
सप्तद्वीपा च पृथिवी यस्य वश्या भवेत् सदा।। 1/186-187, शुक्रनीति, पृ. 75.
23. अभिषिक्तो नृपत्वं तु यदाप्नुयात्।।
बुद्ध्या बलेन शौर्येण ततो नीत्याऽनुपालयन्।
प्रजाः सर्वाः प्रतिदिनमच्छिद्रे दण्डधृक् सदा।। 1/26-27, शुक्रनीति, पृ. 11.
24. आत्मानं प्रथमं राजा विनयेनोपपादायेत्।
ततः पुत्रांस्ततोऽमात्यांस्तो भृत्यांस्ततः प्रजाम्।।
परोपदेशकुशलः केवलो न भवेन्नृपः।

प्रजाधिकारहीनः स्यात् सगुणोऽपि नृपः क्वचित्।। 1/93-94, शुक्रनीति, पृ. 37-38.

25. बहूनामैकमत्यं हि नृपतेर्बलवत्तरम्।
बहुसूत्रकृतो रज्जुः सिंहाद्याकर्षणक्षमः।। 4/7/417, शुक्रनीति, पृ. 900.